आस्टिन का सम्प्रभुता सिद्धान्त

Austin (1790–1859) इंगलैण्ड का विधिशास्त्री, जिसने 1832 में प्रकाशित अपनी पुस्तक विधानशास्त्र पर व्याख्यान Lectures on jurisprudence में संप्रभुता के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया — हॉब्स और बेंथम के विचारों से वह प्रभावित था और बेंथम के समान आस्टिन भी कानून और परम्परा में अन्तर मानता है तथा परम्परा से कानून को श्रेष्ठ बताता है। ऑस्टिन के अनुसार उच्चतर द्वारा निम्नतर को दिया गया आदेश ही कानून होता है। आस्टिन के अनुसार संप्रभुता "यदि कोई निश्चित सत्ताधारी व्यक्ति, जो स्वयं किसी उच्च सत्ताधारी की आज्ञापालन का अभ्यस्त नहीं है, किसी समाज के अधिकांश भाग से अपने आदेशों का पालन कराता है तो उस समाज में वह उच्च सत्ताधारी व्यक्ति प्रभुत्व शक्ति संपन्न होता है तथा वह समाज उस उच्च सत्ताधारी सहित एक राजनीतिक और स्वतंत्र समाज होता है।" "If a determinate human superior, not in the habit of obedience to like a superior, receives habitual obedience from the bulk of given society, that determinate superior is the sovereign in the society and the society including the sovereign, is a society political and independent."

संप्रभुता की विशेषताएं आस्टिन के अनुसार —

1. प्रत्येक राजनीतिक समाज में प्रभुत्व शक्ति उसी प्रकार अनिवार्य है जिस प्रकार कि पदार्थ के किसी पिण्ड में आकर्षण केन्द्र का होना अनिवार्य होता है।
2. संप्रभुता सामान्य इच्छा, प्राकृतिक कानून, दैवी इच्छा, जनमत या मतदान जैसे भावात्मक प्रतीकों में निहित नहीं हो सकती है, बल्कि वह एक निश्चित मनुष्य या समूह या एक निश्चित सत्ता होनी चाहिए जिस पर स्वयं कोई कानूनी प्रभुत्व न हो।
3. इस निश्चयात्मक मानव श्रेष्ठ की शक्ति असीमित और अपरिमित होती है।
4. संप्रभु व्यक्ति के प्रति आज्ञाकारिता आदतन होनी चाहिए सदा सदा नहीं अर्थात स्थिर, निरन्तर और अप्रतिहत।
5. प्रभुत्व शक्ति का आदेश कानून है इसकी अवहेलना करनेवाला दण्ड का भागी होता है।
6. सर्वोच्च प्रभुता की शक्ति अखण्डित होती है अर्थात इसे व्यक्तियों या संघों में विभाजित नहीं किया जा सकता।

आस्टिन एक वकील था और उसने संप्रभुता की व्याख्या केवल वैधानिक दृष्टिकोण से ही किया है। इसलिए आलोचना की जाती है — स्तर

(1) समाज में आस्टिन के जन श्रेष्ठ को खोज पाना कठिन है — "इतिहास में इस प्रकार के निश्चित जन श्रेष्ठ के उदाहरण नहीं मिलते हैं।" हेनरी मेन ने अपनी पुस्तक Early Institutions में लिखा है

Scanned with CamScanner

युग में अनेक साम्राज्यों के ऐसी कोई सीमा नहीं थी जिसे उल्लंघन किया जा सके। मध्ययुग में भी यह निश्चित करना कठिन था कि सम्प्रभु सामान्य है या राजा। सामन्ती युग में भी सामन्तों के बढ़े हुए भाग के कारण वास्तविक संप्रभु का पता लगाना कठिन था। वर्तमान में भी अमेरिका भारत इंगलैण्ड आदि के संविधानों में संप्रभु की निश्चित करना कठिन है।

(२) लोकप्रभुता की अवहेलना करता है — आस्टिन की कल्पना के वैधानिक प्रभु को मान लेने से लोकप्रभुता तथा राजनीतिक प्रभुता दोनों की सत्ता अस्वीकृत हो जायेगी। वर्तमान प्रजातंत्रीय व्यवस्था में ऐसा कर सकना संभव नहीं है। मैकाइवर ने अपनी पुस्तक The modern State में लिखा है - आस्टिन की विचारधारा उपनिवेशों के राजनीतिक जीवन पर ही लागू होती है, क्योंकि इस विचारधारा की विषयवस्तु स्वामी और दास के सम्बन्धों की व्याख्या मात्र है।

(3) कानून प्रभुसत्ताधारी का आदेश मात्र नहीं है - वास्तव में संप्रभु ही एकमात्र कानून का स्रोत नहीं होता बल्कि परम्परागत प्रथाएँ, न्याय सम्बन्धी निर्णयों, वैधानिक टीकाओं और औचित्य पर आधारित सनकील व्यवस्थापन भी कानून के स्रोत के रूप में कार्य करते हैं। मैकाइवर का कहना है "राज्य को रीति रिवाज का निर्माण करने या बदलने की तार्किक शक्ति नहीं होती है। हाँ इतना अवश्य है कि परिस्थितियों में थोड़ा सा परिवर्तन लाकर वह अप्रत्यक्ष रूप से उनको प्रभावित करता है।" डिग्विट ने तो यहाँ तक कहा है "राज्य कानून का निर्माण नहीं करता वरन कानून ही राज्य की स्थापना करते हैं। कानून केवल सामाजिक आवश्यकता का प्रकाशन होता है।

(4) आस्टिन का यह कथन असत्य है कि संप्रभुता अविभाज्य है प्रत्येक राजनीतिक समाज में कर्तव्यों का बँटवारा होता है इसके अलावे वर्तमान में संघात्मक राज्य के अन्तर्गत तो संप्रभुता आवश्यक रूप से विभाजित हो जाती है। कुछ विद्वान संप्रभुता को संविधान सभा में निहित मानते हैं और संघात्मक राज्य में संप्रभुता के आविभाजन पर बल देते हैं लेकिन संविधान सभा शाश्वत नहीं होती और शाश्वतता संप्रभुता का मूल लक्षण है।

(5) शक्ति को अत्यधिक महत्व — आस्टिन के अनुसार उच्चसत्ता अपने सिद्धान्तों का पालन शक्ति द्वारा ही कराती है जबकि वास्तव में अधिकांश जनता कानूनों का पालन दण्ड के भय के कारण नहीं बल्कि इस कारण करती है कि कानून जनता की इच्छा को अभिव्यक्त करता है और इसके पालन में जनता का ही कल्याण निहित होता है। आस्टिन द्वारा शक्ति को अधिक महत्व देने के कारण इतना कहते हैं "आस्टिन के दर्शन में हवलदारी की गन्ध आती है।

(6) संप्रभुता असीमित नहीं है — आस्टिन के अनुसार संप्रभुता का सर्वप्रमुख लक्षण उसकी असीमितता तथा निरंकुशता है लेकिन लॉस्की कहते हैं "राज्य अपने समस्त स्वरूप में सर्वशक्तिमान नहीं हो सकता, क्योंकि बाहरी मामलों में वह अन्य राज्यों के

Scanned with CamScanner

अधिकारों से तथा आन्तरिक क्षेत्र में इनकी प्रकृति तथा अपने दलों के व्यक्तिगत अधिकारों द्वारा सीमित है। इसकी अस्वीकृति पर निम्न प्रतिबन्ध लगाया जा सकता है —

(1) नैतिक प्रतिबन्ध — सम्प्रभुता व्यक्तिगत तथा सामाजिक क्षेत्र के नैतिक नियमों से सीमित होती है जैसे — चोरी या बेईमानी करने के लिए कानून

(2) रीति-रिवाज तथा परम्पराएँ — परम्पराओं का राष्ट्रीय जीवन में बहुत महत्व होता है। हेनरीमेन ने Early History of Institutions में लिखा है — पंजाब का निरंकुश शासक रणजीत सिंह भी ऐसे कानून लागू नहीं कर पाया जो समाज के प्रचलित नियमों के विरुद्ध हो।

(3) धर्म — प्राचीन काल के चर्च और पोप की महत्ता सर्वविदित है। आज भी पाकिस्तान जैसे राज्य में धर्म संविधान का मूल आधार है।

(4) अन्तर्राष्ट्रीय कानून — यद्यपि कानूनी दृष्टि से सम्प्रभुता पर अन्तर्राष्ट्रीय नियमों का कोई प्रतिबन्ध नहीं होता लेकिन किसी भी राज्य द्वारा विश्व जनमत का विरोध कर सकना संभव नहीं है।

(5) अन्य समुदाय — वर्तमान में मानवीय आवश्यकताओं की विविधता के कारण आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में अनेक स्वैच्छिक समुदायों की स्थापना की जाती है। राज्य इन समुदायों के अस्तित्व का ध्यान रखते हुए ही अपनी शक्ति का प्रयोग करता है।

(7) — प्रभुत्व की धारणा घातक है — वर्तमान में जब अणु बम, परमाणु बम, हाइड्रोजन बम जैसे अस्त्र शस्त्रों का निर्माण हो चुका है। इन परिस्थितियों में सम्पूर्ण मानवता से सम्बन्धित प्रश्नों को किसी एक राज्य की इच्छा पर नहीं छोड़ा जा सकता है। नार्मन एन्जल ने अपनी पुस्तक Unseen Assassins में राज्य प्रभुत्व को हत्यारा बताया है। लास्की ने लिखा है "एक स्वतंत्र और प्रभुत्व सम्पन्न राज्य का अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से विचार मानवीय सुख समृद्धि के लिए घातक है।"

इन आलोचनाओं के बावजूद कहा जा सकता है कि आस्टिन ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन वैधानिक दृष्टि से किया है और वैधानिक दृष्टि से यह सिद्धान्त सही है। इसके विवेचन से प्रभुता के लौकिक और राजनीतिक रूपों की अनिश्चितता निश्चितता में बदल जाती है।

बहुलवाद

बोदां, हाब्स, हीगल तथा आस्टिन द्वारा प्रतिपादित सम्प्रभुता की धारणा मौलिक अद्वैतवादी धारणा। इसके अनुसार राज्य की सम्प्रभुता की धारणा स्थायी, सर्वव्यापी तथा अविभाजनीय होती है, इसी राजसत्ता के विरुद्ध जिस विचारधारा का उदय हुआ उसे राजनीति में बहुलवाद या बहुसमुदायवाद कहते हैं। इसके अनुसार राजसत्ता संप्रभु और निरंकुश नहीं है।

समाज में विद्यमान अनेक समुदायों का अस्तित्व राज्यसत्ता को सीमित कर देता है। व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए राज्य के साथ साथ अनेक समुदायों और संघों की सदस्यता स्वीकार करता है। इस स्थिति में राज्य को संपूर्ण सत्ता प्रदान नहीं की जा सकती। डेविस ने लिखा है "बहुलवादी राज्य एक ऐसा राज्य है जिसमें सत्ता का केवल एक ही स्रोत नहीं है, यह विभिन्न क्षेत्रों में विभाजनीय है और विभाजित किया जाना चाहिए।

लिण्डसे ने लिखा "यदि हम तथ्यों का अवलोकन करें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि संप्रभुता के सिद्धान्त का अंत हो चुका है।" लास्की "समाज के ढांचे को पूर्ण होने के लिए संघात्मक होना चाहिए "The structure of social organization if it wants to be adequate, must be federal in character."

गेटेल के अनुसार बहुलवादी यह नहीं मानते कि राज्य एक सर्वोच्च समुदाय है वे अन्य समुदायों को भी आवश्यक एवं प्राकृतिक मानते हैं। राज्य की तरह वे भी अपने क्षेत्र में सर्वोपरि हैं। इसलिए संप्रभुता केवल राज्य का अधिकार नहीं अन्य समुदाय भी उसका उपयोग करते हैं।

बहुलवाद के विकास में सहायक तत्व —

17, 18, तथा 19 वीं सदी में संप्रभुता के असीमित रूप को स्वीकार कर लिया गया था लेकिन यह मान्यता 20 वीं सदी के सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों के अनुकूल नहीं इसलिए जीवन की बहुमुखी आवश्यकताओं पर आधारित बहुलवादी विचारधारा का जन्म हुआ।

हीगल राज्य को नैतिक और आध्यात्मिक संस्था मानता है तथा राज्य की निरंकुश एवं असीमित प्रभुसत्ता का उपासक था। हीगल की इस एकत्ववादी धारणा की प्रतिक्रिया बहुलवाद के रूप में हुआ।

राज्य की असफलता — वर्तमान समय में राज्य की कार्य अक्षमता और राज्य की असफलता सामने आई जा रही है। केन्द्रीकरण की प्रवृत्ति से राज्य की असफलता सामने आई और इसे दूर करने के लिए विकेन्द्रीकरण को अपनाया गया। बहुलवाद का विकास हुआ। लाई के शब्दों में "इससे केन्द्र में रक्तचाप तथा दूरस्थ सिरों पर रक्तहीनता या पाण्डु रोग हो जाता है।

गियर्क और मैटलैण्ड ने लोगों का ध्यान मध्ययुगीन सामाजिक व्यवस्था जिसमें राज्य मात्र एक स्थान पर केन्द्रित नहीं और समाज में आर्थिक संघों को प्रमुख स्थान प्राप्त था। फिगिस ने भी बताया कि सामाजिक सत्ता का स्वरूप संघात्मक होना चाहिए।

19 वीं तथा 20 वीं के प्रारंभ में प्रतिनिध्यात्मक लोकतंत्र के अन्तर्गत प्रादेशिक प्रतिनिधित्व की व्यवस्था को अपनाया गया जिससे असन्तोष उत्पन्न हुआ और व्यावसायिक या कार्यात्मक प्रतिनिधित्व की मांग की गई। जी.डी.एच. कोल ने राज्य का उन्मूलन किया और राज्य को गौण महत्व दिया।